स्वतंत्र भारत में विकलांगों की दुर्दशा : संविधान निर्माण से वर्तमान तक संवेदनशीलता की कमी और उसके नकारात्मक परिणाम - भाग 2

सुबोध जोशी

Freelance translator and author (English & Hindi), Madhya Pradesh

प्रमुख शब्द : विकलांग, विकलांगता, संवेदनशीलता, संविधान, क़ानून, बाधामुक्त वातावरण, जनगणना, शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा, रोज़गार, स्वरोज़गार, पुनर्वास, सामाजिक सुरक्षा, रोकथाम, शीघ्र पहचान, हस्तक्षेप, चिकित्सा, प्रमाण-पत्र, यूडीआईडी, यूएनसीआरपीडी, संयुक्त राष्ट्र संघ, डीआरएम, विश्व स्वास्थ्य संगठन, विश्व बैंक।

भारत विकलांगता संबंधी संवैधानिक एवं वैधानिक पृष्ठभूमि :

भारत में विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता का स्तर कितना निम्न है इसे स्पष्ट करने के लिए सिर्फ यही सच्चाई जान लेना बहुत है कि भारतीय संविधान निर्माताओं ने भी विकलांगता के गंभीर मुद्दे को सतही तौर पर और संकुचित दृष्टिकोण से देखा और आज़ादी के बाद लगभग 50 वर्षों तक भारत में विकलांगों के लिए कोई क़ानून बनाकर लागू नहीं किया गया। 1970 और 1980 के दशक में, डिसेबिलिटी राइट्स मूवमेंट मौजूदा प्रणाली और समाज के खिलाफ कुछ व्यक्तियों की एक लड़ाई बना रहा। मीडिया ने भी इसे कोई महत्व नहीं दिया क्योंकि यह मुद्दा कभी भी इतना दिलचस्प नहीं था कि अन्य मुद्दों के मुकाबले इसका प्रचार किया जाए।

राजनेताओं ने विकलांगों को कभी "वोट बैंक" नहीं माना क्योंकि उनकी कोई आवाज़ नहीं थी। भारत में डिसेबिलिटी राइट्स मूवमेंट एक नेतृत्वविहीन आंदोलन था। नेतृत्व की इस कमी के कारण किसी भी तरह की सफलता हासिल करने के लिए आंदोलन को बहुत लंबा इंतज़ार करना पड़ा और जो कुछ भी सफलता मिली उसके लाभ ज़मीनी स्तर पर अब तक नहीं पहुंच सके हैं।

सच्चाई यह है कि भारत में विकलांगों के लिए क़ानून स्व-प्रेरणा और उनके प्रति संवेदनशीलता के कारण नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी में अपनी नाक बचाने अथवा अंतर्राष्ट्रीय संधिपत्रों को अपनाए जाने की मजबूरी में बने हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा 1982-1993 को अंतर्राष्ट्रीय विकलांग दशक घोषित किया गया और सोच विकलांगों के पुनर्वास की दिशा में मुड़ गयी। इसकी देखादेखी भारत में 1986 में एक रजिस्टर्ड सोसाइटी के रूप में भारतीय पुनर्वास परिषद की स्थापना की गयी। बाद में भारतीय पुनर्वास परिषद अधिनियम 1992 पारित कर 1993 में इसे वैधानिक निकाय का दर्जा दिया गया। लेकिन विकलांगों के कल्याण और पुनर्वास के लिए तब तक भी क़ानून का अभाव था।

1980 में भारत में विकलांगों के कल्याण और पुनर्वास के लिए क़ानून की ज़रूरत स्वीकार कर ली गयी थी। लेकिन भारतीय संविधान में विकलांगता संबंधी क़ानून बनाने का अधिकार राज्य सूची में रखा गया था, इसलिए बात आगे नहीं बढ़ सकी। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के संविधान निर्माताओं में भी एक राष्ट्र के रूप में विकलांगों के प्रति उचित दृष्टिकोण और संवेदनशीलता का अभाव था जिसका प्रभाव यह पड़ा कि विकलांगों के लिए क़ानून बनाने के लिए अंतर्राष्ट्रीय घोषणाओं और संधियों के अस्तित्व में आने के बाद ही कदम उठाए जा सके और इसमें बहुत देर हो गयी। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 253 संसद को शक्तियों के संघीय वितरण को अपने नियंत्रण में लेने और एक विदेशी सत्ता या एक अंतर्राष्ट्रीय निकाय के साथ की गयी संधि को प्रभाव देने में सक्षम बनाता है, भले ही क़ानून का मामला राज्य सूची से संबंधित हो। चूँकि संविधान निर्माताओं से यह चूक हो चुकी थी कि उन्होंने विकलांगता संबंधी क़ानून बनाने का अधिकार राज्य सूची में रखा था, इसलिए अंततः भारत में विकलांगों के लिए पहला कानून 1995 में तब बना जब एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में विकलांगजनों की समानता और पूर्ण भागीदारी की घोषणा अपनाए जाने के बाद भारतीय संसद द्वारा संविधान के अनुच्छेद 253 का उपयोग करते हुए नि:शक्तव्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995 पारित कर लागू किया गया। लगभग दो दशकों बाद इस क़ानून का स्थान लेने वाला दूसरा क़ानून भी यूनाइटेड नेशन्स कन्वेंशन ऑन द राइट्स ऑफ़ पर्सन्स विद डिसेबिलिटी (यूएनसीआरपीडी) पर हस्ताक्षर कर उसे अपनाने के बाद निर्मित कर 2016 में लागू किया गया। यह दोनों घटनाएं दर्शाती हैं कि भारत के विकलांगता संबंधी दोनों आधारभूत क़ानून स्व-प्रेरित नहीं बल्कि अंतर्राष्ट्रीय दतावेज़ो पर आधारित हैं।

भारत में विकलांगों के लिए पहला क़ानून आजादी के 48 वर्षों बाद दिसंबर 1995 में नि:शक्तव्यक्ति (समान अवसर, अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण भागीदारी) अधिनियम 1995

के रूप में भारतीय संसद द्वारा पारित कर लागू किया गया। बारीकी से देखा जाए तो इस क़ानून को बनाने के लिए संसद में कोई बहस ही नहीं हुई, जो कि एक सोच-विचार कर बनाए गए क़ानून की पहली ज़रूरत होती है, क्योंकि जब यह बहस होनी थी तब विपक्ष ने एक घोटाले के नाम पर संसद की कार्यवाही का बहिष्कार कर रखा था। इस कारण विकलांगता संबंधी क़ानून के विधेयक पर कोई बहस नहीं हो सकी और अंततः अनिवार्य कार्यवाही के प्रावधान के तहत विधेयक को मंज़ूरी देकर क़ानून का रूप दे दिया गया। इस नकारात्मक तथ्य को तोड़मरोड़कर आसानी से सकारात्मक रूप से पेश किया जा सकता है कि क़ानून निर्विरोध बना। कहने में बड़ा अच्छा लग सकता है कि विकलांगता संबंधी क़ानून बिना विरोध या आम सहमति से बना। लेकिन यदि इस पर बहस होती तो इसकी ख़ामियों को पहचान कर उन्हें दूर किया जा सकता था, इसमें कुछ बेहतर प्रावधान किए जा सकते थे या इसमें बड़े पैमाने पर सुधार की गुंजाईश सामने आने पर इसे सुधार कर पुनः चर्चा के बाद मंज़ूर कर लागू किया जा सकता था। विधेयक पर बहस होने से एक और लाभ यह होता कि सांसदों में इस विषय में जागरूकता और संवेदनशीलता निर्मित होती और बहस की इस संसदीय प्रक्रिया के बारे में मीडिया में ख़बरें आने से आम जनता में भी जागरूकता और संवेदनशीलता निर्मित होती। नतीजतन एक बेहतर क़ानून विकलांगों के हित में निर्मित होकर लागू होता। क़ानून बनाने में संवेदनशीलता की कमी का इसके प्रावधानों के कार्यान्वयन पर और भी नकारात्मक प्रभाव पड़ा।

अगली कड़ी के रूप में 2011 में तैयार किए गए विकलांगजन अधिकार विधेयक (आरपीडब्ल्यूडी बिल) का उद्देश्य यूएनसीआरपीडी के तहत भारत के दायित्वों को क़ानून का रूप देना था। बिना मूल्यांकन इसकी पुष्टि की कर दी गई। इसे 2016 में क़ानून का रूप दे दिया गया और इसने 1995 के क़ानून का स्थान ले लिया।

इन दोनों क़ानूनों के बीच राष्ट्रीय न्यास अधिनियम 1999 भी भारतीय संसद द्वारा पारित कर लागू किया गया। यह चार चुनी हुई विकलांगताओं से प्रभावित व्यक्तियों की विशिष्ट ज़रूरतों को ध्यान में रखकर उनके कल्याणार्थ निर्मित किया गया। केन्द्रीय सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अधीन राष्ट्रीय न्यास की स्थापना की गयी। इसके अंतर्गत आने वाली विकलांगताएँ हैं ऑटिज़्म, सेरेब्रल पाल्सी, मेंटल रिटार्डेशन और मल्टीपल डिसेबिलिटी। यह क़ानून अन्य कार्यों के अलावा वैधानिक संरक्षकता/वैधानिक अभिभावकता (legal guardianship) देने जैसा महत्वपूर्ण कार्य संपादित करता है। इसके अंतर्गत देश के प्रत्येक ज़िले में लोकल लेवल कमेटी का गठन किया जाना प्रस्तावित है।

सवाल यह पैदा होता है कि क्या एशियाई और प्रशांत क्षेत्र में विकलांगजनों की समानता और पूर्ण भागीदारी की घोषणा और यूएनसीआरपीडी इन दो संधिपत्रों पर आधारित विकलांगता क़ानून भारत की विशिष्ट स्थितियों के हिसाब से विकलांगों की ज़रूरतों को पूरा करते हैं? क्या भारत में विकलांगों की वास्तविक परिस्थितियों, उनकी ज़रूरतों और भारत की वास्तविक स्थितियों के अनुसार बनाए गए क़ानून के उद्देश्य और लक्ष्य ज़्यादा प्रभावी नहीं होते? बेशक़ उनमें उपरोक्त अंतर्राष्ट्रीय संधिपत्रों के बिन्दुओं का समावेश दिशा निर्देशों के रूप में किया जाता। राष्ट्रीय वास्तविकताओं की उपेक्षा कर अंतर्राष्ट्रीय मापदंडों को अपनाना महज खोखला आवरण सिद्ध हो सकता है।

डिसेबिलिटी राइट्स मूवमेंट (डीआरएम) और भारत :

भारत में 1970 के दशक तक, अधिकांश लोग जो किसी भी प्रकार की विकलांगता से प्रभावित थे, उन्हें मुख्यधारा के समाज से बहिष्कृत माना जाता था और हेय दृष्टि से देखा जाता था। किसी भी विकलांग व्यक्ति को भारतीय समाज में धूल के बराबर माना जाता था। अधिकांश को या तो भिक्षा और दया के पात्र के रूप में देखा जाता था या बेहतर मामलों में वे संगीत के क्षेत्र से जुड़े थे। यहां तक कि व्यवस्था (सिस्टम) और समाज द्वारा उन्हें एक बोझ और दायित्व के रूप में देखा जाता था। समाज में इन्हें बहुत कम उपयोगी या अनुपयोगी माना जाता था और इसलिए उनकी और उनकी चिंताओं, ज़रूरतों आदि की घोर उपेक्षा की जाती थी। समाज की दकियानूसी सोच के चलते विकलांगता को किसी के पिछले जीवन के पापों का परिणाम या अभिशाप माना जाता था और विकलांगों को ही उनकी मौजूदा स्थिति के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता था। यह मानसिकता अब भी व्याप्त है, लेकिन इसमें कुछ कमी आयी है । भारत में अशिक्षा, शिक्षा की कमी, अन्धविश्वासों और मिथ्या धारणाओं की प्रबलता और वैज्ञानिक सोच के अभाव ने विकलांगों की स्थिति बद से बदतर बना रखी थी।

इसके विपरीत, उस समय पश्चिमी देशों में दृश्य तेज़ी से बदल रहा था। पश्चिम में, विकलांगता अधिकार आंदोलन ने 1950 के दशक में गति पकड़ना आरंभ कर दिया था, और 1970 के दशक तक इसने सरकारों को शक्तिशाली चुनौती देना आरंभ कर दिया था। जबकि 1970 के दशक में भारत में, इस तरह की माँग उभरना सिर्फ शुरू ही हुई थी। इस लिहाज़ से भारतीय समाज तब भी यानी माँग उठाने में भी पीछे ही था। हालाँकि, यह सच है कि पश्चिमी समाजों में भी, विकलांगता से प्रभावित लोगों के साथ वैसा व्यवहार नहीं किया गया था जैसा किया जाना चाहिए था। इस आंदोलन की शुरुआत से 30 वर्षों पूर्व एडॉल्फ हिटलर जर्मनी में विकलांग आबादी को खत्म करने के प्रयास में था क्योंकि उसकी धारणा थी कि

विकलांग व्यक्ति आर्थिक रूप से उपयोगी नहीं थे। दुर्भाग्यवश भारत में विकलांगों के प्रति कुछ इसी तरह की सोच व्याप्त थी और आज भी व्याप्त है जिसके चलते उन्हें अनुपयोगी, अनुत्पादक और बोझ समझा जाता है।

पश्चिम में, द्वितीय विश्व युद्ध के बाद चीज़ें बदलने लगीं, जब हज़ारों सैनिक विकलांगताओं के साथ घर लौटे और वे डिसेबिलिटी राइट्स मूवमेंट के प्रारंभिक स्रोत बन गए। उन्हें अपने अधिकारों को प्राप्त करने में कुछ सफलता भी मिली क्योंकि वे युद्ध के नायक माने जाते थे और उनकी माँगों को जनता का भारी समर्थन मिला। भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। विकलांगों को वैध अधिकार प्रदान करने के बजाए भारतीय समाज में आमतौर पर उन्हें दान देने की मानसिकता प्रबल रही है और प्रभावित परिवारों को उनके रिश्तेदारों और पड़ोसियों द्वारा अलग दृष्टि से देखा जाता रहा है। अनेक मामलों में, विकलांगता को परिवार के लिए कलंक और घर के अन्य सदस्यों की प्रगति, शादी आदि में बाधक मानकर विकलांग सदस्य को परिवार से निकाल दिया जाता था या विकलांग बच्चों को अक्सर अनाथालयों में छोड़ दिया जाता था। विकलांगता या विकलांग को समाज से छुपाया जाता था। आज भी यह स्थिति बनी हुई है।

संवेदनशीलता और बाधामुक्त वातावरण का अभाव विकलांगों की दुर्दशा का सर्वप्रमुख कारण :

बाधामुक्त वातावरण विकलांगों की सबसे मुख्य ज़रूरत है। विकलांगों को अन्य व्यक्तियों की तरह ही सहजतापूर्वक प्रत्येक अवसर, सुविधा और सेवा तक पहुंचकर अपनी इच्छानुसार उसका लाभ लेने का समान अधिकार है। बाधामुक्त वातावरण के बिना यह संभव नहीं है। चिकित्सा, शिक्षा, रोज़गार, स्वरोज़गार, पारिवारिक एवं सामाजिक गतिविधियों आदि किसी भी चीज़ तक बाधामुक्त वातावरण के बिना विकलांगजन न तो पहुंच सकते हैं, न ही उनका लाभ उठा सकते हैं और न ही भागीदारी कर सकते हैं। भारत में बाधामुक्त वातावरण विकलांगों की ज़रूरत के अनुपात में अपवादस्वरूप ही उपलब्ध है। कोई भी व्यक्ति अपने आसपास निगाह डाल कर आसानी से देख सकता है कि भारत में बाधामुक्त वातावरण की स्थिति क्या है। सभी सार्वजनिक स्थलों का बाधामुक्त होना क़ानूनन अनिवार्य कर दिए जाने के बावजूद हालात लगभग जस के तस हैं। बाधामुक्त वातावरण का अर्थ बहुत गहरा होता है। प्रत्येक विकलांगता की ज़रूरत के अनुसार वातावरण बाधामुक्त होना चाहिए। उदाहरण के लिए गामक विकलांगता से प्रभावित व्यक्ति के सामने आने वाली बाधाएँ श्रवणबाधित या दृष्टिबाधित व्यक्ति के सामने आने वाली बाधाओं से अलग होती हैं। विकलांगताओं के अनुसार बाधाओं का यह अंतर बाधारहित वातावरण को अत्यंत व्यापक अर्थ प्रदान करता है। महज रैंप बना देना ही बाधामुक्त वातावरण नहीं होता।

यह समझना बेहद ज़रूरी है कि बाधाएँ दो प्रकार की होती हैं, पहली, रवैये से संबंधित बाधाएँ (attitudinal barriers), और दूसरी, भौतिक बाधाएँ (physical barriers)। जागरूकता और जानकारी के अभाव में आमतौर पर भारत में सिर्फ़ भौतिक बाधाओं को ही बाधा समझा जाता है। दरअसल, रवैये से संबंधित बाधा मुख्य बाधा होती है जिसका परिणाम भौतिक बाधाओं के रूप में देखने को मिलता है। विकलांगों के प्रति नकारात्मक रवैया या विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता की कमी रवैये से संबंधित बाधा है। भारत में विकलांगों की दुर्दशा का सर्वप्रमुख कारण विकलांगों के प्रति समाज का यह संवेदनहीन और नकारात्मक रवैया ही है। इसी के कारण संविधान निर्माताओं, कानून निर्माताओं, नीति निर्माताओं, कार्यक्रम एवं योजना निर्माताओं और इनका कार्यान्वयन करने वालों ने विकलांगों की स्थिति और ज़रूरतों की तरफ़ ठीक से ध्यान नहीं दिया और अब भी नहीं दे रहे हैं। अंतर्राष्ट्रीय वातावरण की देखा देखी और अंतर्राष्ट्रीय संधिपत्रों को अपनाने के कारण भारत में विकलांगों के लिए क़ानून, नीतियाँ, कार्यक्रम, योजनाएँ आदि बन जाने के बावजूद विकलांगों की दुर्दशा बरक़रार रहने का मुख्य कारण रवैये से संबंधित बाधा ही है। विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता के बिना अर्थात रवैये से संबंधित बाधाएँ हटाए बिना उनके लाभ के लिए किए जाने वाले सभी कार्य महज़ दिखावा बन कर रह जाते हैं। किसी व्यक्ति को क़ानूनन सभी अधिकार दे दिए जाएँ लेकिन उन तक पहुँचने का रास्ता ही उपलब्ध नहीं कराया जाए तो उन सभी अधिकारों का होना न होना बराबर है।

भौतिक बाधाओं के संबंध में एक और महत्वपूर्ण बात यह है कि इनका संबंध काफ़ी हद तक देश की मौलिक संरचना या आधारभूत सुविधाओं से होता है। भारत में अब तक ग़ैर-विकलांग नागरिकों के लिए ही मौलिक संरचना और आधारभूत सुविधाओं का ठीक से विकास नहीं हो सका है। इनके अभाव में ग़ैर-विकलांग नागरिक भी अनेक कठिनाइयों का सामना करने को बाध्य हैं। इस मौलिक संरचना और आधारभूत सुविधाओं का अनुकूलन ही बाधामुक्त वातावरण कहलाता है। लेकिन जब मौलिक संरचना और आधारभूत सुविधाएँ ही अविकसित हैं तो विकलांगों के लिए बाधामुक्त वातावरण फिलहाल एक दिवास्वप्न के समान है। यहां गौर करने लायक एक बात और है कि छोटे शहरों, कस्बों और ग्रामीण इलाकों में और साथ ही पर्वतीय स्थलों जैसे दुर्गम इलाकों में मौलिक संरचना और आधारभूत सुविधाएँ और भी ख़राब स्थिति में है। इस कारण इन इलाकों में विकलांगों को और अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

जनगणना के आंकड़ों और विकलांगों के कल्याण के लिए बनायी जाने वाली नीतियों, कार्यक्रमों और योजनाओं की अविश्वसनीयता :

भारत में विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता की कमी और उनकी घोर उपेक्षा का एक और साक्ष्य यह है कि प्रत्येक 10 वर्षों में होने वाली राष्ट्रीय जनगणना से विकलांगों को आज़ादी के बाद से लगातार बाहर रखा गया। ब्रिटिश राज में 1931 तक जनगणना में विकलांगों की भी गणना हुई और 1941 में द्वितीय विश्व युद्ध के चलते जनगणना हुई ही नहीं। लेकिन आज़ादी के बाद भारत की जनगणना में एक वर्ग के रूप में विकलांगों की जनगणना नहीं की गई। उनका सैंपल सर्वे किया जाता रहा और उन्हीं आंकड़ों के आधार पर उनके बारे में सोचा जाता रहा। सैंपल सर्वे के आंकड़ों के आधार पर ही उनके लिए नीतियाँ, कार्यक्रम और योजनाएँ बनाकर लागू की जाती रही। अंततः चारों ओर से अत्यधिक दबाव पड़ने पर भारत सरकार ने 2001 की जनगणना में अंतिम समय पर विकलांगों को एक अलग वर्ग के रूप में शामिल किया। सन 2001 की जनगणना में विकलांग वर्ग को शामिल किए जाने के विषय में अंतिम समय पर निर्णय होने के कारण इसके लिए वांछित तैयारी और जनगणना कर्मियों का वांछित प्रशिक्षण नहीं हो सका। जब सैंपल सर्वे किया जाता था तब देश की आबादी में विकलांगों की संख्या 10% होने का अनुमान था। जबकि 2001 और 2011 की जनगणना में विकलांगों को एक अलग वर्ग के रूप में शामिल किए जाने के बाद देश की आबादी में यह घटकर क्रमशः 2.1% और 2.21% हो गई। 2011 की जनगणना में 2 करोड़ 68 लाख विकलांग आबादी बताई गई। विश्व स्वास्थ्य संगठन की 2013 की रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में विकलांगों की जनसंख्या 15% के आसपास है। इस हिसाब से भारत में कुल जनसंख्या में से सिर्फ़ 2.21% विकलांग जनसंख्या होना विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। दरअसल, भारत में अनेक विकलांगताओं को विकलांगता की परिभाषा से बाहर रखे जाने के कारण विकलांगों की आबादी कम मालूम पड़ती है। 2016 के क़ानून में 21 प्रकार की विकलांगताओं को शामिल किया गया है, जबकि 1995 के क़ानून में महज 7 प्रकार की विकलांगताएँ शामिल की गई थी और 2001 और 2011 की जनगणनाएँ 1995 के क़ानून के प्रभावी रहते हुई। विश्व बैंक के अनुसार भारत में विकलांगों की आबादी 8 करोड़ के आसपास होना चाहिए। भारत में गरीबी और शिक्षा की कमी को देखते हुए कुछ अन्य एजेंसियों और संगठनों का अनुमान है कि देश की आबादी में विकलांगों की संख्या 10% से 20% तक हो सकती है। ऐसे में भारत में विकलांगों की आबादी वैश्विक औसत 15% के आसपास होने से इंकार नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है भारत में विकलांगों की ज्ञात आबादी और वास्तविक आबादी में बहुत बड़ा अंतर है। विकलांगों के लिए निर्मित कर कार्यान्वित की जाने वाली कल्याणकारी योजनाओं की सफलता या असफलता इस बात पर निर्भर है कि विकलांगों की आबादी के आंकड़े कितने सही या गलत हैं। सच्चाई यह है कि भारत में अब तक विकलांग आबादी के सही आंकड़े ही उपलब्ध नहीं हैं।

देश की आबादी में विकलांगों की संख्या को लेकर ऐसी हास्यास्पद स्थिति यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि भारत में विकलांगों के प्रति किस तरह का रवैया व्याप्त है, उनके प्रति संवेदनशीलता का स्तर क्या है और उनके कल्याण के लिए भारत की प्रतिबद्धता का स्तर क्या है। एक अन्य कठिनाई यह है कि भारत की जनगणना में विकलांगों की सही संख्या जानना शिक्षा, जानकारी और जागरूकता की कमी के कारण और भी मुश्किल है। इसके अलावा सामाजिक कलंक के डर से परिवार के सदस्य की विकलांगता छुपाने की प्रवृत्ति के कारण भी सही आंकड़े प्राप्त करना मुश्किल है। इन सब कारणों से यह बेहद ज़रूरी है कि जनसंख्या के आंकड़े एकत्र करने वाले कर्मियों को परिवारों से सही जानकारी प्राप्त करने के लिए बेहतर प्रशिक्षण के माध्यम से अधिक कुशल बनाया जाए। जानकारी देने वाले उपरोक्त में से कुछ कारणों के चलते सही जानकारी देने में असमर्थ हो सकते हैं अथवा जानकारी छुपा सकते हैं। इसलिए मुख्य रूप से जानकारी एकत्र करने वालों की कुशलता ही सटीक आंकड़े प्राप्त करने का माध्यम हो सकती है।

चिकित्सा सेवाओं की कमी का विकलांगताओं की रोकथाम, उनकी शीघ्र पहचान और हस्तक्षेप पर प्रभाव :

जन्म लेने के लिए और उसके बाद व्यक्ति की सबसे पहली ज़रूरत चिकित्सा सेवाओं की होती है। विकलांगता के मामले में चिकित्सा सेवाओं का अत्यधिक महत्व है। विकलांगताओं की रोकथाम के लिए भावी माता-पिता का स्वस्थ होना, गर्भावस्था के दौरान महिलाओं की नियमित जाँच, देखभाल और उन्हें जरूरी चिकित्सा सहायता एवं दवाएँ उपलब्ध कराना, उनके शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य की देखभाल, अस्पतालों में पेशेवर योग्यता प्राप्त चिकित्सकों और कर्मियों द्वारा प्रसव कराया जाना, प्रसव के दौरान और तुरंत बाद माँ या नवजात शिशु को होने वाली किसी भी स्वास्थ्य समस्या से निपटने के लिए उसी स्थान पर सारी चिकित्सा सुविधाएँ मौजूद होना, ज़रूरत पड़ने पर उन्हें हस्तक्षेप या इलाज के लिए तत्काल दूसरी जगह भेजने की व्यवस्था आदि की विकलांताओं की रोकथाम में बहुत बड़ी भूमिका होती है। लेकिन जिस प्रकार विकलांगता प्रमाण-पत्र बनाने के लिए वर्तमान भारतीय चिकित्सा ढांचे में अनेक कमियाँ है उसी प्रकार इन सेवाओं के संबंध में भी अनेक कमियाँ हैं।

इसी प्रकार किसी को विकलांगता हो जाने पर विकलांगता की शीघ्र से शीघ्र पहचान, उसके उपचार, उसकी गंभीरता में कमी लाने या उसके प्रभाव को आगे बढ़ने से रोकने के लिए जिस प्रकार की चिकित्सा सुविधाओं की ज़रूरत होती है उनकी भी बेहद कमी है, जैसे करेक्टिव सर्जरी, फिज़ियोथेरेपी, ऑक्यूपेशनल थेरेपी, स्पीच थेरेपी, न्यूरॉलॉजिकल उपचार, मनोवैज्ञानिक परामर्श, मनोचिकित्सा आदि। विकलांग व्यक्ति के लिए इन सेवाओं की ज़रूरत प्रतिदिन या बार-बार पढ़ सकती है। लेकिन इनकी उपलब्धता मुख्य रूप से बड़े शहरों तक ही सीमित है। ऐसे में इन्हें प्राप्त करने के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है, जो सिर्फ साधन संपन्न लोगों के लिए ही संभव होता है। अधिकांश व्यक्ति इनसे वंचित ही रह जाते हैं और विकलांगता के प्रभाव, जो बढ़ भी सकता है, को झेलने के लिए बाध्य रहते हैं।

कुल मिलाकर चिकित्सा सेवाओं की गंभीर कमी के कारण भारत में विकलांगताओं की रोकथाम, उनकी शीघ्र पहचान और हस्तक्षेप की दिशा में देश की जनसंख्या के आकार और ज़रूरत के अनुपात में नगण्य कार्य हो रहा है ।

निष्कर्ष :

स्पष्ट है कि भारत स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी अपने विकलांगजनों के प्रति असंवेदनशील रहा है और यह स्थिति बरक़रार है। संवेदनशीलता की यह कमी संविधान निर्माताओं से आरंभ होती है और उनमें देश के विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता अभाव एक अत्यंत दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। इसके कारण देश में विकलांगता से जुड़े सभी पहलू हाशिए पर चले गए। इस कारण देश को विकलांगों के हित में संवेदनशीलता और सकारात्मक वातावरण बनाने के लिए कोई मार्गदर्शन, दिशा निर्देश और प्रेरणा नहीं मिली। विकलांगताओं की रोकथाम, उनकी शीघ्र पहचान एवं हस्तक्षेप, विकलांगों की चिकित्सा, शिक्षा और पुनर्वास के लिए कोई वातावरण नहीं बना। बाधामुक्त वातावरण विकलांगों की बेहद महत्वपूर्ण ज़रूरत होती है जिसका आज भी सब तरफ लगभग पूरी तरह अभाव है। विकलांगों के लिए स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लगभग आधी शताब्दी तक कोई क़ानून नहीं बनना बहुत विचित्र बात है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि संविधान निर्माताओं ने विकलांगता को एक राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखा ही नहीं था और यह परिकल्पना भी नहीं की थी कि इस विषय में केंद्र को कोई क़ानून बनाने की कोई ज़रूरत है या भविष्य में होगी। इसीलिए उन्होंने विकलांगता के विषय में क़ानून बनाने का अधिकार राज्य सूची में रखा था। अंतर्राष्ट्रीय वातावरण में तेज़ी से आते बदलाव, संयुक्त राष्ट्र संघ की सक्रियता और अंततः विकलांगता के विषय में अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों और अंतरराष्ट्रीय संधिपत्रों के दबाव के चलते भारत में विकलांगों के लिए क़ानून बनाने की प्रक्रिया आरंभ हुई। भारत में विकलांगों के लिए पहला क़ानून 1995 में बना। तत्पश्चात विकलांगजनों के अधिकारों पर संयुक्त राष्ट्र का 2006 का संधिपत्र अपनाने के बाद 2016 में भारत में विकलांगों के लिए नया क़ानून बना, जिसने 1995 के क़ानून की जगह ली। बेहतर यह होता कि भारत की विकलांग आबादी के सही आंकड़ों के आधार पर विशिष्ट भारतीय संदर्भों का ध्यान रखते हुए विकलांगों के लिए क़ानून बनाए जाते। अंतर्राष्ट्रीय संधिपत्रों के दिशा निर्देश उसमें शामिल करना निश्चित रूप से उसे और व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लंबे समय तक विकलांगता के बारे में कोई स्पष्ट क़ानून नहीं होने के कारण कोई स्पष्ट नीति भी मौजूद नहीं थी। संवेदनशीलता के अभाव में संविधान के निर्माण और क़ानून के निर्माण में विकलांगों की उपेक्षा की तरह ही जनगणना में भी विकलांगों की 50 वर्षों तक पूर्ण उपेक्षा की गई। जनगणना से उन्हें दूर रखकर महज सैंपल सर्वे के आंकड़ों के आधार पर उनके लिए गिने चुने कार्य किए गए। आज भी भारत में विकलांगों की आबादी के सही आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इससे यह स्पष्ट है कि भारत में विकलांगों की सही आबादी जानकर सही आंकड़ों के आधार पर उनके लिए नीतियाँ, कार्यक्रम और योजनाएं बनाने के प्रति उदासीनता का वातावरण रहा है। उपरोक्त सभी बातों का परिणाम यह हुआ कि भारत में कभी भी मौजूदा विकलांगों के लिए सही नीति, कार्यक्रम और योजनाएं नहीं बनी और जो कुछ भी बनी उनके कार्यान्वयन पर भी संवेदनशीलता का अभाव हावी रहा। इनका परिणाम यह भी हुआ कि देश में विकलांगताओं की रोकथाम उनकी शीघ्र पहचान और हस्तक्षेप की तरफ ध्यान नहीं दिया गया। यहाँतक कि मौजूदा विकलांगों के परीक्षण, प्रमाणन और चिकित्सा के लिए भी सुविधाओं की उपलब्धता बहुत ही कम है।

स्वाभाविक है ऐसे नकारात्मक वातावरण का प्रभाव विकलांगों की शिक्षा, रोज़गार और पुनर्वास पर भी नकारात्मक ही पड़ा। क़ानून, स्पष्ट नीति और बाधामुक्त वातावरण के अभाव में विकलांग बच्चों और युवाओं का शिक्षा से अपेक्षित जुड़ाव नहीं हुआ। शिक्षा से जुड़ाव की कमी और बाधामुक्त वातावरण की कमी दोनों का मिलाजुला असर विकलांगों के लिए रोज़गार एवं स्वरोज़गार के अवसरों और उनके पुनर्वास पर भी पड़ा। ऐसे में उनका आत्मनिर्भर बन कर परिवार और समाज में सम्मान और गरिमा का जीवन जीना संभव नहीं है। दूसरी तरफ, विकलांगों के लिए पर्याप्त सामाजिक सुरक्षा भी उपलब्ध नहीं है। इसलिए अधिकांश विकलांग आज भी मुख्य रूप से भागीदारीविहीन जीवन जीने और परिवार या दूसरों पर आश्रित रहने के लिए बाध्य हैं।

इन सभी बातों की तरफ अत्यंत गंभीरता के साथ ध्यान देने की ज़रूरत है। अंतर्राष्ट्रीय संधियों के दिशा निर्देशों के अतिरिक्त देश की विकलांगता संबंधी आंतरिक विशेषताओं की तरफ भी ध्यान देते हुए सकारात्मक कार्यवाही की जानी चाहिए। सर्वोच्च प्राथमिकता विकलांगों के प्रति संवेदनशीलता और सकारात्मक वातावरण निर्मित करने की होनी चाहिए। विकलांगों को महज कागज़ पर अधिकार प्रदान करने से उनकी स्थिति में कोई फ़र्क नहीं पड़ सकता। इसके लिए इन अधिकारों से संबंधित कर्तव्यों के पालन की तरफ भी पूरा ध्यान देना होगा। देश में विकलांगों की जनसंख्या के सही आंकड़े प्राप्त कर और विकलांगों की ज़रूरतों का सटीक मूल्यांकन कर उनकी चिकित्सा, शिक्षा, आर्थिक पुनर्वास, कल्याण और सामाजिक सुरक्षा के लिए प्रभावी नीतियाँ, कार्यक्रम और योजनाएँ बनाना होंगी और उनका कार्यान्वयन भी पूरी गंभीरता से करना होगा। इन सबके साथ विकलांगों को आदर्श बाधामुक्त वातावरण प्रदान करना होगा ताकि अपने अधिकारों का उपयोग करते हुए वे अपनी इच्छा अनुसार अवसरों, सेवाओं और सुविधाओं का लाभ लेते हुए, पूर्ण भागीदारी करते हुए समानता, सम्मान और गरिमा के साथ गुणवत्तापूर्ण जीवन जी सकें।

संदर्भ

Samagra Shiksha (accessed on 29 August 2020; http://samagra.mhrd.gov.in/index.html)

Inclusive Education of the Disabled at Secondary Stage (accessed online on 31 August 2020; https://www.mhrd.gov.in/iedss)

Jha, M. 2016. The History of India's Disability Rights Movement. The Diplomat. December 21, 2016 (accessed online on 2 September 2020; https://thediplomat.com/2016/12/the-history-of-indias-disability-rights-movement/)

Disability Information Resources (accessed on 3 September 2020; https://www.dinf.ne.jp/doc/english/intl/jsrd/escap2002/e_02.html#:~:text=proportions.%5B22%5D-,II.,OF%20DISABLED%20PERSONS%2C%201993%2D2002&text=The%20Proclamation%20on%20the%20Full,in%20Beijing%2C%20in%20December%201992

Disability Information Resources (accessed on 3 September 2020; https://www.dinf.ne.jp/doc/english/intl/apddp/9.html)

Wikipedia; Rehabilitation Council of India (accessed on 3 September 2020; https://en.wikipedia.org/wiki/Rehabilitation_Council_of_India)

MHRD; Right to Education (accessed on 4 September 2020; https://www.mhrd.gov.in/rte#:~:text=The%20Constitution%20(Eighty%2Dsixth%20Amendment,may%2C%20by%20law%2C%20determine)

Department of Empowerment of Persons with Disabilities (accessed on 4 September 2020; http://disabilityaffairs.gov.in/content/)

Written Examination Guidelines by Department of Empowerment of Persons with Disabilities (accessed on 5 September 2020; https://data.nta.ac.in/Download/Notice/Guidelines_29_08_2018.pdf)

The National Trust (accessed on 6 September 2020; https://www.thenationaltrust.gov.in/content/)

We Capable; Disability Statistics, Data and Facts in India [Infographic] (accessed on 7 September 2020; https://wecapable.com/disability-statistics-data-facts-india-infographic/#:~:text=2.21%25%20of%20total%20population%20in%20India%20has%20disability.&text=Overall%20there%20are%202%20crore%2068%20lakh%20persons%20with%20disability.&text=Only%2036.3%25%20of%20the%20disabled,about%2098%20lakhs)%20are%20employed